फ़ासीवाद और हिन्दुत्व

प्रसन्न कुमार चौधरी

फ़ासीवाद और हिन्दुत्व/ लेखक: प्रसन्न कुमार चौधरी

ई-प्रकाशन: जुलाई, 2023

https://prasannachoudhary.blogspot.com/ से साभार

प्रसन्न कुमार चौधरी

20 अगस्त 1955 को बिहार के दरभंगा जिले के बाउर गांव में जन्मे। वर्तमान में झारखण्ड के देवघर में निवास। समाजवाद, अर्थशास्त्र साहित्य, समाज और दर्शन पर हिंदी और अंग्रेजी में गंभीर लेखन प्रकाशित कृतियां: सृष्टि-चक्र (काव्य-कृति); अनंत का छंद (एक तत्वशास्त्रीय विमर्श); बिहार में सामाजिक परिवर्तन के कुछ आयाम (सह-लेखन); स्वर्ग पर धावा: बिहार में दलित आन्दोलन (सह-लेखन); 1857: बिहार-झारखण्ड में महायुद्ध (सह-लेखन); अतिक्रमण की अंतर्यात्रा: ज्ञान की समीक्षा का एक प्रयास; पिकेटी: मार्क्स एंड कैपिटल (अंग्रेजी); जेनेसिस ऑफ़ कैपिटल इन इंडिया (अंग्रेजी); कौतुक पर्वत के सैलानी (किंडल ई-बुक); राष्ट्र, राज्य और समाज (किंडल ई-बुक); मन एव मनुष्याणां (किंडल ई-बुक)। इनके अलावा हिंदी और अंग्रेजी में अंकेक लेख विभिन्न पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं में प्रकशित।

प्रस्तावना

क. बीसवीं सदी का तीसरा और चौथा दशक। महासमर (1914-1918) बीत चुका था। युरोप की धरती लहूलुहान थी और उसका मानस क्षत-विक्षत। युद्ध में करोड़ों लोग मारे गये थे। उत्पादक शक्तियों का ऐसा विनाश इतिहास ने शायद ही कभी देखा था। युद्ध भूमि से अपने-अपने देश लौटते सैनिकों के साथ फ्लू की वैश्विक महामारी (1918-1920) करोड़ों जानें ले चुकी थी। महाशक्तियों ने तो बहुत पहले ही (कुछ देशों को छोड़कर) पूरी दुनिया को आपस में बाँट रखा था – अपने-अपने युद्ध लड़ने के लिए इन महाशक्तियों ने अपने-अपने उपनिवेशों से ही बड़ी संख्या में सिपाही भर्ती किए थे। महायुद्ध के बाद विजयी महाशक्तियाँ युरोप में राष्ट्रों के बीच सीमाओं का मनमाना पुनर्निर्धारण कर रही थीं, नये राष्ट्र बनाये जा रहे थे और उपनिवेशों का भी पुनर्बंटवारा हो रहा था। एक आर्थिक महाआपदा (1929) मुँह बाये खड़ी थी।

बर्लिन पर सोवियत सेना का कब्जा (1945)

प्रथम विश्वयुद्ध समाप्त होते न होते युरोप की राजनीतिक व्यवस्था और उसका सामाजिक-सांस्कृतिक ताना-बाना भी बिखर चुका था। रूस की अक्टूबर क्रान्ति (1917) ने ज़ारशाही का अन्त कर दिया और एक नयी राजनीतिक व्यवस्था को केन्द्र कर एक नये राजनीतिक ध्रुवीकरण की नींव रखी। पराजित जर्मनी की असफल क्रान्ति (1919) और उसी क्रम में हुए रक्तपात के बाद जर्मनी की राजनीति में नये परिवर्तन घटित हो रहे थे। शताब्दियों के संघर्ष के बाद आयरलैंड को (खण्डित) आज़ादी मिली (1922)। उपनिवेशों में भी मुक्ति आन्दोलनों ने ज़ोर पकड़ा। उधर तुर्की में **मुस्तफ़ा कमाल पाशा** (1881-1938) के नेतृत्व में गणतांत्रिक क्रान्ति (1923) ने पहले से ही मरणासन्न ऑटोमन साम्राज्य (1299-1922) का अन्त कर दिया। जर्मनी की पराजय, ज़ारशाही और ऑटोमन साम्राज्य के अन्त, सोवियत संघ के गठन (1922) आदि ने युरोप में शक्ति-

संतुलन के जिस नये दौर का आग़ाज़ किया, उसका अन्त तो आगे एक और विश्वयुद्ध में होना था। यही दौर था जब इटली में फ़ासीवाद (1922), जर्मनी में नाज़ीवाद, स्पेन में फ्रैंको की तानाशाही, जापान में सैन्यवाद आदि ने अपना चेहरा दिखाना शुरू कर दिया था।

ख. महाविनाश ने जहाँ एक ओर मानवजाति की समस्त विकृतियों और बर्बरताओं को सतह पर ला दिया था, वहीं उसके गर्भ में मानव समुदायों के बीच पारस्परिक सम्मान और समानता, स्वतंत्रता और सहभागिता, तथा सहकार और सौहार्द की जो उदात्त सृजनात्मक परम्परा है, उसे भी परवान चढ़ाने का अवसर प्रदान किया।

प्राचीन काल से ही मानवजाति में इन दो प्रवृत्तियों के बीच संघर्ष चला आ रहा है। एक धारा मानव जाति को नस्ल, पंथ, संस्कृति, जाति, समुदाय आदि आधारों पर 'श्रेष्ठ' और 'निम्न' में बाँट कर 'श्रेष्ठ' द्वारा 'निम्न' के दमन-उत्पीड़न, बहिष्कार-निष्कासन और उसके संहार तथा उन्मूलन का पक्षपोषण करती है, और इसके लिए बर्बर हिंसात्मक अभियान चलाती है। 'श्रेष्ठ' और 'निम्न' की परिभाषाएँ अलग-अलग परिस्थितियों में बदलती रही हैं। कुल मिलाकर, समुदाय-आधारित भेदभाव, उत्पीड़न और विनाश का पक्षपोषण करने वाली यह वैचारिक-राजनीतिक धारा एक मानव-द्रोही धारा है, जिसके बर्बर अभियानों से मानवजाति के ही हिस्सों को इतिहास में बेइन्तहां ज़ुल्म और क़त्लेआम का सामना करना पड़ा है। दूसरी धारा मानव समुदाय के विभिन्न समुदायों के बीच परस्पर समानता और सम्मान का सम्बन्ध क़ायम करने पर ज़ोर देती है और इसके आधार के रूप में समुदायों के बीच आर्थिक-सामाजिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक न्याय स्थापित करने का पक्षपोषण करती है। **मानवजाति में जो मानवता है, वह इसी धारा की उपलब्धि है।**

ग. प्रथम विश्वयुद्ध, रूसी क्रान्ति, समाजवादी आन्दोलन, और आगे महामंदी (1929) की पृष्ठभूमि में जो उथल-पुथल की स्थिति पैदा हुई, उसमें मुख्य रूप से युरोप में और आम तौर पर पूरी दुनिया में एक खतरनाक, मानव-विरोधी वैचारिक-राजनीतिक धारा अस्तित्व में आई जिसने अपने संगठन, अपनी जन-गोलबंदी और अपने हिंसक आन्दोलनों के ज़रिये युरोप के कुछ प्रमुख देशों में सत्ता हासिल करने में भी सफलता पाई। इस वैचारिक-सांगठनिक-आन्दोलनात्मक धारा की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार थीः

1. सर्वसत्तावादः युरोप और पूरी दुनिया में फैले इस तरह के संगठन **जनवादी गणतंत्र के विरोधी** थे। वे अभिव्यक्ति की आज़ादी समेत तमाम जनवादी संगठनों तथा संस्थाओं को खत्म कर एक सर्वसत्तावादी राज्य-व्यवस्था के हिमायती थे। दरअसल **1848 की क्रान्तिकारी लहर** के बाद, युरोप के विभिन्न देशों में दीर्घकालीन संघर्षों तथा अनेक कुर्बानियों के बाद जनवादी अधिकारों का विस्तार हुआ था – विभिन्न वर्गों तथा समुदायों को संगठन बनाने का अधिकार मिला, मताधिकार का विस्तार हुआ, श्रमिक वर्गों की कार्य-स्थितियों में अनेक सुधारों को मान्यता मिली, ट्रेड यूनियनों का प्रसार हुआ, सामाजिक-जनवादी दलों और अन्य श्रमिक दलों ने अपनी मज़बूत उपस्थिति दर्ज़ की, महिलाओं के मताधिकार के आन्दोलन ने ज़ोर पकड़ा, और इस तरह, कुल मिलाकर समाज और राज्य के जनतांत्रीकरण की गति तेज़ हुई।

सर्वसत्तावादी इस जनवादी-गणतांत्रिक प्रक्रिया के विरुद्ध प्रतिक्रान्ति के प्रतिनिधि थे। वे समाज में अराजकता के लिए इसी जनतांत्रीकरण को दोषी ठहराते थे। ऐसे सभी संगठन उदारवाद, समाजवाद और कम्युनिज़्म के घोर विरोधी तो थे ही, समाज में 'नयी व्यवस्था' (न्यू ऑर्डर) कायम करने के लिए एक त्राणकर्ता अधिनायक, एक मसीहा, एक सम्राट के निरंकुश शासन का पक्षपोषण करते थे। ऐसे शासन की स्थापना के लिए वे किसी भी हद तक जाने को तत्पर रहते थे। अलग-अलग देशों में इन अधिनायकों के अलग-अलग विरुद थे (जैसे, इटली में 'ड्युस', जर्मनी में 'फ़्युरर', और स्पेन में 'कौडिलो'; आगे इसी तरह भारत में 'वीर' या 'हिन्दू हृदय-सम्राट्' जैसे विरुद का प्रचलन देखा जा सकता है)।

2. नस्लवाद-उग्रराष्ट्रवादः इस वैचारिक धारा के लोग मानवजाति के विभिन्न समुदायों को **नस्लीय** या **राष्ट्रीय-सांस्कृतिक** आधार पर 'श्रेष्ठ'-'निम्न', 'उत्तम'-'अधम' के रूप में बाँटते थे, और 'श्रेष्ठ'/'उत्तम'/ नस्ल/राष्ट्र/संस्कृति द्वारा 'निम्न'/'अधम' नस्लों/राष्ट्रों/संस्कृतियों पर शासन करने, उनका दमन करने, उन्हें अपने क्षेत्रों से निष्कासित करने, तथा उनके प्रति निरन्तर नफ़रत फैलाने का पक्षपोषण करते थे, और उनके क़त्लेआम तथा जनसंहार का जश्न मनाते थे। (इस लेख में अँग्रेजी 'रेस' के लिए नस्ल तथा 'नेशन' के लिए राष्ट्र और कहीं-कहीं जाति का प्रयोग किया गया है।)

अपने-अपने क्षेत्रों में ये 'श्रेष्ठ' नस्ल/राष्ट्र/संस्कृति वाले 'निम्न' नस्ल/राष्ट्र/संस्कृति वालों को समाज की प्रगति में बाधक मानते थे और उन पर अपने आचरण से समाज को दूषित करने का आरोप लगाते थे।

इस तरह, एक समुदाय के ख़िलाफ़ अपने कथित नस्ल/राष्ट्र को गोलबंद करने के ज़रिये ऐसे समूह अपने समाज/राष्ट्र की अन्दरूनी कमजोरियों, वर्ग-विरोधों तथा टकरावों का शमन करना चाहते थे। वर्ग संघर्षों से जूझते तथा समाजवादी आन्दोलन के प्रसार की स्थिति में उन दिनों के युरोप के शासक श्रेणियों के लिए नस्लीय/राष्ट्रीय एकजुटता का यह विकल्प 'शान्ति-व्यवस्था' क़ायम रखने के लिए कारगर लगता था। ट्रेड यूनियनों और किसान संगठनों के आन्दोलनों को, उदार-जनवादी तथा समाजवादी आन्दोलनों को 'नस्ल-विरोधी', 'राष्ट्र-विरोधी' करार दिया जा सकता था, और उनपर तरह-तरह की बन्दिशें लगाई जा सकती थीं (और लगाई गईं)।

इतिहास में विभिन्न समुदायों और पंथों के बीच संघर्ष होते रहे हैं, और उनके बीच कई तरह के पूर्वाग्रह भी मौज़ूद रहे हैं – अतीत के इन संघर्षों और पूर्वाग्रहों को हवा देकर, दिन-रात कथित रूप से 'निम्न और भिन्न' समुदायों के प्रति विष वमन कर ऐसी शक्तियों को सामयिक रूप से अपने-अपने 'राष्ट्रों' को गोलबंद करने, इस तरह चिह्नित समुदायों के ख़िलाफ़ उन्हें उकसाने और हिंसा को अंजाम देने में सफलता भी मिली। अन्ततः ऐसे समुदायों के क़त्लेआम और जनसंहार का मार्ग प्रशस्त किया गया।

कहने की ज़रूरत नहीं कि नस्ल/राष्ट्र का सारा श्रेणीकरण, उनकी परिभाषा तथा 'उच्च' और 'निम्न' में, 'शुद्ध' और 'अशुद्ध' में उनके वर्गीकरण का मानवजाति और उसके इतिहास से कुछ लेना-देना नहीं है – यह बीसवीं सदी के इन नस्लवादी/राष्ट्रवादी विचारकों द्वारा गढ़ा गया सिद्धान्त है। अपने वैचारिक-राजनीतिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उन्होंने अपनी इस गढ़न्त को अपनी सुविधानुसार इतिहास पर थोप दिया। यही कारण है कि इस वैचारिक प्रवृत्ति के समर्थक अपने-अपने देशों की स्थिति के अनुरूप इस नस्लवादी वर्गीकरण में संशोधन करते रहे हैं।

दरअसल, 'उच्च' और 'निम्न' में, 'शुद्ध' और 'अशुद्ध' में मानव समुदायों का वर्गीकरण स्वयं एक मानव-विरोधी कृत्य है। नस्लवाद (और उसके आधार

पर ‘श्रेष्ठ’ तथा ‘निम्न’ नस्लों का वर्गीकरण) मानवजाति को एक अन्तहीन नस्लीय संघर्षों तथा युद्धों में झोंक देने की वैचारिकी है।

3. पुरुष वर्चस्ववादः इन (नस्लवादी-उग्रराष्ट्रवादी) संगठनों का पूरा ढांचा ही पुरुष वर्चस्ववाद पर आधारित होता है। स्त्रियाँ उनके लिए नस्लीय प्रसार और श्रेष्ठता का ज़रिया होती हैं। अपने नस्ल के प्रसार में वे महिलाओं से संतानोत्पादन की क्षमता बढ़ाने की अपेक्षा रखते हैं – स्त्री-सम्बन्धी उनके विचार के केन्द्र में है स्त्रियों की प्रजनन-शक्ति। दूसरे नस्ल के पुरुषों से अपनी महिलाओं को सुरक्षित रखने के लिए वे उन पर बंदिशें लगाते हैं, वहीं अपने पुरुषों द्वारा दूसरे नस्ल की स्त्रियों से अधिक-से-अधिक बच्चे पैदा करने को वे उपलब्धि मानते हैं। जो शासक दूसरे समुदाय पर जीत हासिल करने के बावज़ूद ऐसा करने में असफल रहे, उनकी वे निंदा करते हैं (छिः)। उनके द्वारा किसी अन्य समुदाय के उपनिवेशीकरण की प्रक्रिया उस समुदाय की स्त्रियों को अपने अधीन करने की प्रक्रिया के बिना पूरी नहीं होती।

4. पूंजी का संरक्षण-संवर्धनः 1914-1945 के बीच की अवधि में अभूतपूर्व संकट से गुजरते पूंजीवादी समाज में इस सर्वसत्तावादी-नस्लवादी विचारों और आन्दोलनों को सम्बन्धित देशों के बड़े पूंजीपतियों के प्रभावशाली धड़े का समर्थन और प्रोत्साहन प्राप्त था। इस समर्थन और प्रोत्साहन के बिना इन शक्तियों का सत्ता के शिखर तक पहुँचना संभव न था। सत्ता हासिल करने के बाद इन शक्तियों ने भी श्रमिकों पर हर तरह का प्रतिबंध लगाते हुए सार्वजनिक सम्पत्ति को पूंजी के हवाले करने में कोई देरी नहीं की। इस पर हम आगे और भी चर्चा करेंगे।

5. पंचमांगी संगठनः इन सर्वसत्तावादी-नस्लवादी-उग्र राष्ट्रवादी संगठनों के अपने अर्ध-सैनिक, पंचमांगी दस्ते थे जिनका काम इस तरह की गोलबंदी सुनिश्चित करने के लिए चुनिंदा हिंसात्मक कार्रवाइयों को अंज़ाम देना था। कत्लों व जनसंहारों में उनकी भूमिका, ज़ाहिर है, अहम हो जाती थी। ऐसे संगठन गुप्त रूप से काम करते थे, अलग-अलग देशों में उनकी पहचान के अलग-अलग पहनावे, रंग और प्रतीक चिह्न थे। इटली में ये **ब्लैक शर्ट्स** (काले कुर्तेवाले) के नाम से जाने जाते थे, तो जर्मनी (और भारत) में **ख़ाकी पैंट्स** से। चीन में **ब्लू शर्ट्स**, तो ब्राज़ील तथा मिस्र में **ग्रीन शर्ट्स**, और दक्षिण

अफ़्रीका में **ग्रे शर्ट्स** के नाम से।

6. आक्रामक प्रचार-तंत्रः युरोप के सर्वसत्तावादी-नस्लवादी-उग्र राष्ट्रवादी संगठनों ने अपना एक आक्रामक प्रचार-तंत्र विकसित किया था जिसका लक्ष्य उग्र नस्लवादी-राष्ट्रवादी ध्रुवीकरण को अंज़ाम देना था। वही सूचना सूचना थी जो इस ध्रुवीकरण में सहायक हो। इतना ही नहीं, प्रत्येक सूचना का कायान्तरण कर उसे इसी ध्रुवीकरण का माध्यम बना दिया जाता था – इसके लिए शब्द तथा अर्थ का घालमेल किया जाता, और झूठ तथा अफ़वाहों का सहारा लिया जाता।

फ़ासीवाद विरोधी प्रतिरोध योद्धा (इटली)

कुल मिलाकर, बीसवीं सदी के तीसरे और चौथे दशक में उत्पन्न अभूतपूर्व आर्थिक-राजनीतिक-सामाजिक-सांस्कृतिक संकट की पृष्ठभूमि में युरोप तथा दुनिया के विभिन्न देशों में जो सर्वसत्तावादी-नस्लवादी-उग्र राष्ट्रवादी वैचारिक प्रवृत्ति और आन्दोलन सामने आया, वह विभिन्न देशों की विशिष्ट स्थितियों में विशिष्ट नामों के साथ अवतरित हुआ। हर जगह यह स्थापित-प्रचलित व्यवस्था और सत्तारूढ़ दलों के ख़िलाफ़ अभियान चलाते हुए, समाजवाद तथा कम्युनिज़्म से समाज की 'रक्षा' कर **'नयी'** व्यवस्था बनाने, **'नया'** इतिहास लिखने, और अपने-अपने राष्ट्र के पुराने गौरव को पुनः प्रतिष्ठित करने के नारे के साथ सामने आया। यहाँ हम संक्षेप में कुछ प्रमुख देशों में इस प्रवृत्ति पर विहंगम दृष्टि डाल सकते हैं।

इटलीः फ़ासीवाद

प्रथम विश्वयुद्ध के तुरत बाद यह प्रवृत्ति सबसे पहले इटली में **बेनितो मुसोलिनी** (1883-1945) के **फ़ासिस्ट आन्दोलन** के रूप मे सामने आई। वहाँ शीघ्र ही (1922 में) वह सत्ता पर भी काबिज़ हो गई। मुसोलिनी के साथ इस वैचारिकी के प्रस्तुतकर्ता थे **जियोवन्नी जेंटाइल** (1875-1944)। 1932 में मुसोलिनी की रचना

'डॉक्ट्रिन ऑफ़ फ़ासिज़्म' के लेखन में भी जेंटाइल का अहम योगदान माना जाता है।

नस्ल-सम्बन्धी **हिटलर** की अवधारणा से दूसरे राष्ट्र के नेताओं तथा विचारकों का सहमत होना संभव नहीं था। हिटलर **आर्यों की (नीली आँखों और सुनहले बालों वाली) नॉर्डिक शाखा** को सबसे शुद्ध और श्रेष्ठ नस्ल मानते थे और इसी नस्ल के विश्व साम्राज्य के हिमायती थे (छिः)। इस लिहाज़ से आर्यों की ही अन्य सारी शाखाएँ **मिश्रित** और **क्षुद्र** थीं। इतालवी लोग **आर्यों की भूमध्यसागरीय शाखा** के माने जाते थे – नस्लीय आधार पर रोमन साम्राज्य के ज़माने से विभिन्न आर्य-गैर-आर्य समुदायों के साथ वैवाहिक सम्बन्धों के कारण भूमध्यसागरीय शाखा के लोगों को हीन दृष्टि से देखा जाता था।

मुसोलिनी के लिए इसे स्वीकारना संभव नहीं था। वे ख़ुद को **आधुनिक रोमन सम्राट** मानते थे। उन्होंने इस नस्लीय सिद्धान्त में परिवर्तन करते हुए यह दावा किया कि जैविक आधार पर 'श्रेष्ठ' और 'निम्न', 'उत्तम' और 'अधम' का निर्धारण नहीं किया जा सकता। **'सांस्कृतिक श्रेष्ठता'** ही इस तरह के निर्धारण का आधार हो सकती है; और रोमन लोग – भूमध्यसागरीय शाखा के लोग **सांस्कृतिक रूप से** अन्य समुदायों की तुलना में 'श्रेष्ठ' रहे हैं। रोम की गौरवशाली परम्परा की पृष्ठभूमि में सांस्कृतिक रूप से 'श्रेष्ठ' इतालवियों को सांस्कृतिक रूप से 'निम्न' समुदायों पर शासन करने, उनके कर्तव्याकर्तव्यों का निर्णय लेने का अधिकार है। मुसोलिनी का यह सांस्कृतिक नस्लवाद-राष्ट्रवाद बाद में (भारत समेत) अन्य कई देशों के नस्लवादियों-राष्ट्रवादियों के लिए भी प्रेरणादायक साबित हुआ।

1921 में ही अपने एक भाषण में मुसोलिनी ने यह कहा था कि फ़ासिज़्म भूमध्यसागरीय-आर्य नस्ल की चिरकालिक वृहत्तर ज़रूरत की उपज है। सांस्कृतिक रूप से श्रेष्ठ इतालवियों के लिए यह ज़रूरी है कि वे इथियोपिया और पड़ोसी स्लोवेनिया तथा क्रोएशिया के स्लाव समुदायों की निकृष्ट संस्कृति को नष्ट कर दें। 'पीढ़ियों की अनन्त शृंखला से उद्भूत, इस (इतालवी) नस्ल के तमाम भौतिक और अभौतिक मूल्यों के सर्वोच्च सम्मिलन से निर्मित इतालवी राष्ट्र एक जीवंत सत्ता है।' आधुनिक रोमन सम्राट के रूप में मुसोलिनी इतालवी साम्राज्य के सभी हिस्सों का इतालवीकरण करने की इच्छा रखते थे।[1]

पूंजीवाद के गहराते संकट और समाजवादी आन्दोलन के प्रसार की पृष्ठभूमि में मुसोलिनी ने जो राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्था प्रस्तावित की, वह कॉरपोरेटिज़्म कहलाती है। (यहाँ कॉरपोरेटिज़्म का मतलब बड़े व्यावसायिक घरानों के प्रभुत्व वाली राजनीतिक व्यवस्था से नहीं है।) समाज के विभिन्न संघटक अंगों – यथा, उद्योग, कृषि, व्यवसाय, सेना, विज्ञान, शिल्प, श्रम, शिक्षा आदि के राष्ट्रीय संघों के बीच **राज्य** की मध्यस्थता से समन्वय और सामञ्जस्य स्थापित कर राजनीतिक व्यवस्था का संचालन – यह थी मुसोलिनी की कॉरपोरेटिस्ट व्यवस्था। इन सभी छोटे-बड़े संघों की एक राष्ट्रीय परिषद स्थापित की गई। इसी परिषद को नवम्बर 1933 में सम्बोधित करते हुए मुसोलिनी ने महामंदी (1929) की पृष्ठभूमि में पूंजीवाद के तीन युगों का ज़िक्र किया – पहला युग (1830-1870) पूंजीवाद का **गतिशील**, **वीरगाथा** (हेरोइक) **काल** था (हालांकि अब उस काल में लौटना मुमक़िन नहीं था)। दूसरा युग (1870-1914) पूंजीवाद का **स्थिर** युग था, और 1914 से शुरू होनेवाला तीसरा युग **पतनशील पूंजीवाद** का युग कहा गया, जिसे **सुपरकैपिटलिज़्म** भी कहा जाता था। इस पतनशील पूंजीवाद (के स्तरीकरण और उपभोक्तावाद) की आलोचना करते हुए मुसोलिनी अर्थव्यवस्था में राज्य के हस्तक्षेप के बारे में अपना मत कुछ इस प्रकार रखते थे – कठिनाइयाँ उत्पन्न होने पर पूंजीवादी उद्यम मृत शरीर की तरह राज्य की बाँहों मे जा गिरते हैं। ऐसी स्थिति में राज्य का हस्तक्षेप अधिकाधिक ज़रूरी हो जाता है। जो कभी राज्य की परवाह नहीं करते थे, वही अधीरता के साथ राज्य का सहारा ढूँढ़ने लगते हैं। राज्य का हस्तक्षेप वहीं ज़रूरी है जहाँ निजी पूंजी का या तो अभाव है या वह अपरिपक्व और अक्षम है।[2] बहरहाल, ख़ुद मुसोलिनी की राजकीय स्वामित्व में कोई दिलचस्पी नहीं थी। वे मानते थे कि निजी सम्पत्ति मानवीय व्यक्तित्व को पूर्णता प्रदान करती है; इसीलिए उनकी कॉरपोरेटिव अर्थव्यवस्था में पूंजीवादी उद्योगों के स्वामी-संचालकों और उद्यमियों की सराहना तथा निजी सम्पत्ति के उसूल का सम्मान करते हुए, बड़े पैमाने पर **राजकीय उद्यमों के निजीकरण** की नीति लागू की गई। 1922-25 के बीच पहली फ़ासिस्ट सरकार ने जीवन बीमा कम्पनियों पर राजकीय एकाधिकार खत्म कर दिया, और राजकीय स्वामित्व वाले अधिकांश टेलिफ़ोन नेटवर्क तथा सेवाओं को निजी कम्पनियों के हाथों बेच दिया गया। राजकीय स्वामित्ववाले धातु मशीनरी के सबसे बड़े उद्योग का पुनः निजीकरण कर दिया गया, सड़कों के निर्माण तथा उनके परिचालन के क्षेत्र में निजी क्षेत्रों को काफ़ी रियायतें दी गईं आदि, आदि।[3]

अपने कॉरपोरेटिस्ट अर्थव्यवस्था को 'मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था' और 'समाजवादी अर्थव्यवस्था', दोनों के विकल्प के रूप में प्रस्तुत करते हुए, मुसोलिनी इसे **सामूहिक राजनीतिक विचारधारा** की संज्ञा देते थे, जिसके अन्तर्गत समाज के छोटे-बड़े सभी घटकों के संघ **राज्य की मध्यस्थता** से पूरे समाज का उसी प्रकार स्वस्थ, संतुलित और सामञ्जस्यपूर्ण संचालन करते हैं, जिस प्रकार शरीर के विभिन्न अंग। उनका लोकप्रिय नारा था – 'सबकुछ राज्य के अधीन, राज्य से परे और राज्य के विरुद्ध कुछ भी नहीं।'

मुसोलिनी का अंत

यह था घोर मंदी के युग में तमाम जनवादी संस्थाओं को प्रतिबंधित करते हुए, और इतालवी जनता के तमाम संघर्षों तथा उनकी संघर्षशील एकजुटता को उग्र इतालवी नस्लवाद-राष्ट्रवाद की भेंट चढ़ा कर, पूंजी के स्वामियों के खुले खेल का मार्ग प्रशस्त करनेवाली – 'सबका साथ, सबका विकास' वाली – फ़ासिस्ट राजनीतिक व्यवस्था। (जर्मनी समेत) अनेक देशों के ऐसे अनेक समूहों के लिए मुसोलिनी का इटली कई अर्थों में प्रेरणा प्रदान करता था।

'सबका' – यह मासूम शब्द, कुछ संदर्भों में, सर्वग्रासी, डरावना अर्थ भी ग्रहण कर लेता है। **'सबका', ऐसी स्थिति में, अनेको अन्यायों की पर्दादारी का पर्याय बन जाता है।** (इसी तरह 'एकात्म' शब्द का भी कुछ ऐसा ही हश्र होता है।) मानवजाति के विभिन्न समुदायों के बीच, जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में, ऐतिहासिक रूप से विकसित अनेक विषमताओं तथा विभेदों की पृष्ठभूमि में 'सबका', 'एकात्म' जैसे शब्दों का प्रयोग अत्यन्त सावधानी की मांग करता है। इन विषमताओं और विभेदों के मद्देनज़र, अनेक स्थितियों में, 'सबका' की जगह समुदाय-आधारित 'पक्षपात', 'एकात्म' की जगह 'स्वतंत्रता तथा समानता पर आधारित बहुलता' ज़रूरी हो जाती है।

1938 में, जर्मनी का अनुसरण करते हुए इटली की मुसोलिनी सरकार ने भी यहूदी-विरोधी कानून पारित किए, और युद्ध के दौरान इतालवी यहूदियों की क़रीब

बीस फ़ीसदी आबादी को जर्मनी के 'मृत्यु शिविरों' में भेज दिया !

28 अप्रैल, 1945 को इतालवी छापामारों ने मुसोलिनी और उनकी प्रेमिका की गोली मारकर हत्या कर दी और मिलानो के एक चौराहे पर उनके मृत शरीर को उल्टा लटका दिया। मुसोलिनी के क़रीबी, फ़ासिज़्म के दार्शनिक, इटली के शिक्षा मंत्री (1922-1924), सार्वजनिक शिक्षा की सुप्रीम कॉउन्सिल के अध्यक्ष (1926-1928), और फ़ासिस्ट ग्रैंड कॉउन्सिल के सदस्य (1925-26) ज़ियोवन्नी ज़ेंटाइल क़रीब एक साल पहले ही 15 अप्रैल, 1944 को कम्युनिस्ट छापामारों द्वारा मारे जा चुके थे। बीस से भी ज़्यादा वर्षों बाद इटली में जनतंत्र की बहाली हुई। 1948 के चुनावों में मुसोलिनी समर्थक नव-फ़ासिस्टों को दो प्रतिशत मत मिले।

जर्मनीः नाज़ीवाद

जर्मनी में सर्वसत्तावादी-नस्लवादी-उग्रराष्ट्रवादी वैचारिक प्रवृत्ति नाज़ीवाद के रूप में अवतरित हुई। **अडोल्फ़ हिटलर** (1889-1945) के व्यक्तित्व में इसने मूर्तिमान रूप ग्रहण किया। ऐसे समूह प्रायः अपने समय में प्रचलित लोकप्रिय शब्दावली का प्रयोग अपनी परियाजना की स्वीकार्यता तथा उसके विस्तार के लिए करते हैं। 29 जुलाई, 1921 को **नेशनल सोशलिस्ट जर्मन वर्कर्स पार्टी** (नाज़ी पार्टी) के अध्यक्ष के रूप में हिटलर को सारी सत्ता सौंप दी गई थी। बारह वर्ष बाद, 1933 में, वे जर्मनी की सत्ता पर काबिज़ हुए और 1934 में सारी सत्ता अपने हाथ में लेते हुए ख़ुद को फ़्युरर घोषित कर दिया। हिटलर और नाज़ीवाद पर काफ़ी लिखा जा चुका है – दरअसल जर्मन नाज़ीवाद और इतालवी फ़ासीवाद इस वैचारिक-राजनीतिक प्रवृत्ति के लिए प्रयुक्त आम शब्दावली बन चुके हैं।

नाज़ीवाद मानवजाति के इतिहास में संभवतः सबसे बड़े नस्लीय जनसंहार के लिए जाना जाता है। नाज़ियों के नस्लीय उन्माद में विभिन्न रूपों में (खासकर गैस चेम्बरों में) क़रीब साठ लाख यहूदी मारे गये।

शुद्ध नस्ल की नॉर्डिक आबादी के प्रसार के लिए उनके द्वारा किये गये प्रयोगों की चर्चा करना यहाँ ज़रूरी नहीं। ऐसे प्रयोग नारियों के लिए अत्यन्त अपमानजनक और दमनकारी होते हैं। उनके ऐसे प्रयोगों से बच्चे भी अछूते नहीं थे। 1942 में 'ऑपरेशन हे' के तहत पोलैण्ड में 'जर्मन रक्त' की रक्षा के नाम पर

'नीली आँखों और सुनहले बालों वाले' बच्चों के अपहरण की योजना बनाई गई। इन बच्चों को जर्मनी में ऐसे परिवारों को सौंपना था जो इन बच्चों के 'अच्छे रक्त' के प्रति प्यार के कारण इन्हें बिना किसी शर्त के (स्वेच्छा से ?) अपनाने को तैयार थे ! और सचमुच, जून 1944 में, जर्मनी की नौंवी सेना ने पोलैण्ड में ऐसे क़रीब चालीस से पचास हजार बच्चों का अपहरण कर उन्हें जर्मनी भेज दिया था।[4]

बहरहाल, यहाँ इतना कहना ही काफ़ी है कि उग्र नस्लीय-पुरुष वर्चस्ववादी-राष्ट्रवाद और सैन्यीकरण ने जर्मन समाज और पूरे युरोपीय समाज के ताने-बाने पर जो क़हर बरपाया, उसकी भरपाई आज तक नहीं हो पाई है।

इस सर्वसत्तावादी-नाज़ीवाद को भी तत्कालीन जर्मनी के प्रभावशाली पूंजीपतियों का समर्थन प्राप्त था। वह महामंदी का काल था (नाज़ी इस संकट के लिए यहूदी पूंजीपतियों तथा मध्यवर्ग को दोषी ठहराते थे)। उस समय अधिकांश पूंजीवादी देशों में मंदी से उबरने के लिए बड़े पैमाने पर राजकीय हस्तक्षेप का सहारा लिया जा रहा था। वह कीन्स, और रूज़वेल्ट की 'न्यू डील' का समय था। लेकिन जर्मनी की अर्थव्यवस्था इसकी उलट दिशा अपना रही थी – आर्थिक क्रियाकलापों में राजकीय हस्तक्षेप के विपरीत (इटली की तरह) सार्वजनिक उद्यमों का **पुनर्निजीकरण** किया जा रहा था।

ऐसा कहा जाता है कि अँग्रेज़ी में प्राइवेटाइज़ेशन (अथवा री-प्राइवेटाइज़ेशन) शब्द का पहला प्रयोग 1930 के दशक में जर्मन नाज़ियों की आर्थिक नीतियों की व्याख्या के क्रम में हुआ। आम पूंजीवादी देशों की नीतियों के विपरीत, जर्मनी की नाज़ी सरकार सार्वजनिक स्वामित्व वाले उद्यमों को निजी क्षेत्र के हवाले कर रही थी (श्रमिक संगठनों तथा उनके क्रियाकलापों पर पाबंदी की स्थिति में ही ऐसा करना संभव हो सका था)। (जनवरी 1930 से नवम्बर 1933 के बीच) जर्मनी का शेयर बाजार भी अन्य पूंजीवादी देशों की तुलना में मज़बूत था। 1935 से 1941 के बीच पूंजी पर प्राप्ति (रिटर्न) काफ़ी अच्छी थी (12 से 18 प्रतिशत के बीच)।[5]

लगता है, इन्हीं स्थितियों में, फ़्रैंकफ़ुर्ट स्कूल के संस्थापकों में से एक **मैक्स होर्खाइमर** ने द्वितीय विश्वयुद्ध की पूर्व बेला में यह टिप्पणी की थीः '**यदि आप पूंजीवाद पर बात करने को इच्छुक नहीं हैं, तो बेहतर होगा कि फ़ासिज़्म के बारे में आप चुप ही रहें।**'[6]

मुसोलिनी के मारे जाने के दो दिन बाद (30 अप्रैल, 1945) को सोवियत लाल सेना द्वारा पकड़े जाने से बचने के लिए हिटलर ने अपनी प्रेमिका/पत्नी के साथ अपने बंकर में आत्महत्या कर ली।

पूंजी के समस्त अन्यायों और अपराधों का घनीभूत रूप ही इस मानव-विरोधी फ़ासीवादी-नाज़ीवादी सत्ता में प्रकट हुआ – उपनिवेशों में सभी पूंजीवादी राष्ट्र यह खेल खेलते ही रहते थे; यही नस्लवादी-उग्र राष्ट्रवादी खेल अब उनके दरवाज़े पर जा पहुँचा था। करोड़ो लोगों की मौत और उत्पादक शक्तियों की अभूतपूर्व बर्बादी ने इतिहास की समस्त बर्बरताओं को पीछे छोड़ दिया था। (प्रसंगवश, यहाँ अमेरिकी महाद्वीप के क़रीब दो सौ वर्षों के उपनिवेशीकरण के दौरान युद्ध, महामारी और संसाधनों की लूट के ज़रिये उस महाद्वीप के स्थानीय जनों की क़रीब नब्बे प्रतिशत आबादी के बर्बर संहार को, और दास-व्यापार तथा अफ़्रीकी-अमेरिकनों के साथ नस्लीय भेदभाव, उनके उत्पीड़न और उनके हत्याकाण्डों को भी याद रखना चाहिए।)

स्पेनः फ़्रैंको की तानाशाही

इंटरनेशनल ब्रिगेड के सदस्य (स्पेन, 1937)

इतालवी फ़ासिस्टों, जर्मन नाज़ीवादियों और पुर्तगाल की मदद से 1 अक्टूबर, 1936 को **जनरल फ़्रांसिस्को फ़्रैंको** (1892-1975) ने स्पेन के जनवादी-प्रजातांत्रिक सरकार को अपदस्थ कर एक अधिनायकवादी-उग्र राष्ट्रवादी सत्ता की स्थापना की। बहरहाल, अपने अन्य राजतंत्रवादी, रूढ़िवादी सहयोगियों के साथ ये उग्र राष्ट्रवादी **फ़ैलेंगिस्ट** तब पूरे स्पेन को अपने नियंत्रण में लेने में कामयाब न हो सके। क़रीब तीन वर्षों तक (1936-39) स्पेनी फ़ासिस्टों और जनवादी-प्रजातांत्रिक शक्तियों के बीच गृहयुद्ध चलता रहा। इटली और जर्मनी की भारी मदद से 1 अप्रैल, 1939 को उन्हें पूरे स्पेन पर अपना आधिपत्य जमाने में कामयाबी मिली।

इस गृहयुद्ध में एक ओर फ्रैंको के सैन्य गिरोह के नेतृत्व में उग्र राष्ट्रवादी फैलेंगिस्ट और उनके कई राजतंत्रवादी, रूढ़िवादी, परम्परावादी सहयोगी थे, तो दूसरी ओर जनवादी गणतंत्र के पक्ष में समाजवादियों, कम्युनिस्टों, गणतंत्रवादियों आदि का संयुक्त मोर्चा, **पोपुलर फ्रंट** था। इस फ्रंट को सोवियत संघ और मेक्सिको का समर्थन प्राप्त था। गणतांत्रिक सरकार को मान्यता देने के बावज़ूद संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस ने इस गृहयुद्ध में हस्तक्षेप न करने की नीति अपना रखी थी।

इस गृहयुद्ध में कम्युनिस्ट इंटरनेशनल द्वारा स्थापित **इंटरनेशनल ब्रिगेड** के तहत **61 देशों के 35,000 वालंटियर्स** ने गणतंत्रवादियों के पक्ष में हिस्सा लिया था। ऐसे समय में जब पूरे युरोप में उग्र राष्ट्रवाद-नाज़ीवाद-सर्वसत्तावाद अपने चरम पर था, तब 61 देशों की विभिन्न राष्ट्रीयताओं, पंथों और समुदायों के 35,000 लोगों का गणतंत्र के पक्ष में लड़ने के लिए स्पेन जाना एक अभूतपूर्व घटना थी। इनमे से हजारों लोग घायल हुए, बंदी बनाये गये और हजारों ने अपनी कुर्बानी दी। गृहयुद्ध की समाप्ति के बाद, गणतंत्रवादियों के कब्जेवाले इलाकों में फ्रैंको की सेना ने क़रीब 10,000 लोगों को मौत के घाट उतार दिया। फरवरी 1939 में फ्रांस और ब्रिटेन की सरकार ने फ्रैंको की सत्ता को मान्यता दे दी थी। इस गृहयुद्ध में स्पेन की सहायता के लिए लंदन में एक स्पेन-भारत समिति का भी गठन किया गया था। भारत से छः लोग इस गृहयुद्ध में शामिल हुए थे।[7]

स्पेन में यहूदियों की कम संख्या होने के कारण स्पेनी उग्र राष्ट्रवादी हिटलर की तरह उनके खात्मे के बजाए, कैथोलिक पंथ में उनके धर्मांतरण पर ज़ोर देते थे।

जापानः सैन्यवाद

1929 की महामंदी के आसपास जापानी शासकों के अच्छे-ख़ासे हल्कों में यह विचार ज़ोर पकड़ने लगा था कि सैन्य आधिपत्य के जरिये ही जापान की आर्थिक समस्याओं का समाधान हो सकता है। मेज़ी सुधारों (1868) के बाद जापान में पूंजीवाद का तेजी से प्रसार हुआ, लेकिन तब तक दुनिया के और एशिया के पूर्वी हिस्से पर, अमेरिका समेत पश्चिम युरोप की शक्तियाँ अपना साम्राज्य क़ायम कर चुकी थीं। जापान ने 1910 में अनेक वर्षों की धमकियों तथा युद्ध के बाद कोरिया

को अपने साम्राज्य में शामिल कर लिया था (द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति तक वह जापान का ही अंग बना रहा)। 1931 में उसने उत्तर-पूर्व चीन (मंचुरिया) पर हमला कर दिया और 1937 तक उत्तर-पूर्वी चीन के एक बड़े भूभाग को अपने नियंत्रण में ले लिया था। अब वह समूचे पूर्वी एशिया में अपने साम्राज्य का विस्तार करने के मंसूबे बाँध रहा था।

कच्चे माल (और खाद्यान्न) के लिए जापान आयात पर निर्भर था, लेकिन पश्चिमी देशों ने उसके आयात-निर्यात पर कई बंदिशें लगा रखी थीं। जापानियों को नस्लीय भेदभाव का भी सामना करना पड़ता था। जापान के पूंजीपतियों के प्रभावशाली हिस्सों को लगता था कि पूर्वी एशिया के देशों पर, जिनमें कई ब्रिटेन, हॉलैण्ड और फ्रांस के उपनिवेश थे, सैन्य आधिपत्य क़ायम किए बिना उनकी अग्रगति संभव नहीं। जापानी मध्य वर्ग के अच्छे-ख़ासे समूह भी पूर्वी एशिया पर जापान के वर्चस्व को लेकर काफ़ी आकर्षित थे। एक आक्रामक सैन्य-सत्ता की स्थापना, और पूर्वी एशिया के देशों को उपनिवेश बनाने के लिए युद्ध छेड़े बिना यह मुमक़िन न था। (उत्तरी चीन और कोरिया पर आक्रमण, आधिपत्य और जनसंहार समेत अनेक बर्बर कृत्यों के कारण जापान पर कई प्रतिबंध भी लगे थे।)

इस उग्र सैन्यवाद को समर्पित एक गुप्त संगठन – **ब्लैक ड्रेगन सोसायटी** – 1930 के दशक के जापान में काफ़ी सक्रिय था, और कई ज़ुनियर सैन्य अफ़सर भी इससे जुड़े थे। एक उग्र राष्ट्रवादी सैन्य सरकार की स्थापना के लिए इस संगठन ने कई हिंसात्मक घटनाओं को भी अंज़ाम दिया था। जापान ने नवम्बर 1936 में पहले जर्मनी, और फिर इटली के साथ एक कॉमिंटर्न-विरोधी समझौते पर हस्ताक्षर किया – इसी समझौते ने द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू होने के बाद त्रिपक्षीय समझौते का रूप लिया। जर्मनी और इटली ने एशिया में 'न्यू ऑर्डर' (नयी व्यवस्था) के नेता के रूप में जापान को मान्यता दी और युद्ध की स्थिति में हर तरह की सहायता का भरोसा दिया। बहरहाल, अक्टूबर 1941 में प्रधानमंत्री कोनू फ़ुमिमारो के इस्तीफे के बाद उनके युद्ध मंत्री **तोजो हिदेकी** (1884-1948) द्वारा सत्ता संभालने से जापानी सैन्यवाद को बड़ा आवेग मिला। फिर शुरू हुआ तोजो का पूर्वी एशिया पर आधिपत्य का उग्र अभियान। शुरुआती वर्षों में उसे काफ़ी सफलता मिली। जनवरी 1942 में मनीला (फ़िलीपीन) पर कब्जे के बाद फरवरी में सिंगापुर, फिर डच ईस्ट इंडीज़ (इंडोनेशिया) और रंगून (बर्मा) पर कब्जे ने पूर्वी

एशिया पर जापान के प्रभुत्व को अभूतपूर्व विस्तार दिया। बहरहाल, 1944 बीतते-न-बीतते जापान के इस उग्र सैन्यवादी अभियान को झटका लगना शुरू हो गया।

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद, 1941-44 के दौरान प्रधानमंत्री रहे तोजो हिदेकी पर युद्ध अपराधों का मुकदमा चला और 23 दिसम्बर, 1948 को उसे फांसी दे दी गई।

ब्राज़ीलः एकात्मवाद

ब्राज़ील में यह फ़ासिस्ट वैचारिक-राजनीतिक प्रवृत्ति **एकात्मवादी** (इंटेग्रलिस्ट) आन्दोलन के रूप में जानी जाती है। अक्टूबर 1932 में **प्लिनिओ सालगाडो** नामक लेखक ने इसकी स्थापना की थी और यह आन्दोलन दक्षिण पुर्तगाल में इसी नाम से चले आन्दोलन का ही ब्राज़ीलियन अवतार था। इतालवी फ़ासिज़्म से प्रभावित सालगाडो (जर्मन नस्लवाद का समर्थन नहीं करने के कारण) नाज़ीवाद से दूरी बनाकर रखते थे, हालांकि इस दल के कुछ प्रमुख नेता यहूदी-विरोधी थे। यह दल **ब्राज़ीलियन एकात्मवादी दल** (पुर्तगाली नाम के पहले अक्षरों को लेकर, **ए.आई.बी**) नाम से जाना जाता था। इसकी **ग्रीन शर्ट्स** (हरे कुर्तेवाले) नाम से एक अर्ध-सैनिक शाखा भी थी। मार्क्सवाद तथा उदारवाद के उग्र विरोधी इस एकात्मवादी दल ने ब्राज़ील में फ़ासिस्ट शैली के कई प्रदर्शन और पथ-संचलन (पैरेड) भी आयोजित किये थे। आज ब्राज़ील में इस एकात्मवादी विचारधारा से जुड़े दो छोटे दल हैं। 2018 के राष्ट्रपति चुनाव में इन दलों ने **जैर बोल्सोनारो** का समर्थन किया था।

ब्राजील के एकात्मवादियों की परेड

प्रसंगवश, जनसंघ के नेता **दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानववाद** और इस पुर्तगाली-ब्राज़ीलियन एकात्मवाद में वैचारिक स्तर पर कई समानताएँ मिल जाएँगी।

चीनः ब्लू शर्ट्स सोसायटी

इतालवी फ़ासिज़्म से प्रभावित चीन का उग्र राष्ट्रवादी संगठन क्वोमिंताङ के अन्दर ही गुप्त रूप से सक्रिय था और **ब्लू शर्ट्स** (नीले कुर्तेवाले) के नाम से जाना जाता था। चीन में इनके कुछ और समूह थे – जैसे, चाइना रिकंस्ट्रक्शन सोसायटी आदि। शुरू में इस ग्रुप के अधिकांश सदस्य एक सैनिक अकादमी (व्हैम्पाओ सैनिक अकादमी) से जुड़े थे। तीस के दशक के दौरान सैनिक और राजनीतिक क्षेत्र में इसका कुछ विस्तार तो हुआ; लेकिन, खासकर जापानी आक्रमण विरोधी प्रतिरोध युद्ध के दौरान, चीनी कम्युनिस्टों के बढ़ते प्रभाव के कारण इसे कोई खास सफलता हासिल नहीं हुई।

दक्षिण अफ़्रीकाः ग्रे शर्ट्स

दक्षिण अफ़्रीका में रंगभेद के रूप में नस्लवाद पहले से ही संस्थाबद्ध था। तथापि, 1932 में जर्मन नाज़ियों से प्रेरित **साउथ अफ़्रीकन जेंटाइल नेशनल सोशलिस्ट मूवमेंट** की स्थापना की गई जिसे **ग्रे शर्ट्स** (भूरे कुर्तेवाले) नाम से भी जाना जाता था। इसी तरह के कुछ और भी दल थे। ऐसे ही एक ग्रुप **न्यू ऑर्डर** का गठन एक पूर्व कैबिनेट मंत्री **ओस्वाल पिरो** ने 1940 में किया था।

इसी तरह, संयुक्त राज्य अमेरिका, मिस्र, लीबिया आदि देशों में भी फ़ासीवादी-नाज़ीवादी संगठन सक्रिय थे। मिस्र में यह **यंग ईज़िप्ट** आन्दोलन के रूप में (अथवा **ग्रीन शर्ट्स** के नाम) से जाना जाता था। तब इटली के उपनिवेश लीबिया में मुसोलिनी ने ही **लीबियन अरब फ़ासिस्ट पार्टी** का गठन किया था। इटली के ही दूसरे उपनिवेश इथियोपिया में ऐसे प्रयासों को कड़े प्रतिरोध के कारण सफलता नहीं मिली। संयुक्त राज्य अमेरिका में ऐसे तो कई संगठन थे, लेकिन सबसे प्रमुख नाज़ीवादी दल था **जर्मन-अमेरिकन बुंद**। 1936 में गठित इस नाज़ीवादी दल की सदस्यता सिर्फ जर्मन-मूल के अमेरिकी नागरिकों के लिए खुली थी। ये लोग रूज़वेल्ट प्रशासन की निन्दा करते थे, उनकी 'न्यू डील' को 'ज्यू

डील' कहते थे, यहूदी-अमेरिकी ग्रुपों का विरोध करने के साथ-साथ कम्युनिज़्म तथा ट्रेड यूनियनों के ख़िलाफ़ भी अभियान चलाते थे। (वर्तमान में ऐसे कुछ समूह ट्रम्प के अभियान से जुड़े हैं।)

बहरहाल, जिन देशों में ऐसे समूहों को पूंजीवादी घरानों के प्रभावशाली हिस्सों का समर्थन नहीं था, वहाँ वे हाशिए के समूह ही बने रहे। फिर भी, समाज में विभिन्न समुदायों के प्रति नफ़रत फैलाने, न्याय के आधार पर सामाजिक पुनर्रचना के प्रयासों में व्यापक जनता की एकजुटता में बाधा उत्पन्न कर वे अपनी विघटनकारी भूमिका निभाते रहे।

भारतः हिन्दुत्व

सर्वसत्तावादी-नस्लवादी-उग्र राष्ट्रवादी यह वैचारिक-राजनीतिक प्रवृत्ति भारत में **हिन्दुत्व** की विचारधारा के रूप में सामने आई। औपनिवेशिक भारत में आज से सौ वर्ष पूर्व इस विचारधारा को मूर्त रूप देने का काम **विनायक दामोदर सावरकर** (1883-1966) ने 1923 में प्रकाशित अपनी रचना 'हिन्दुत्व' में किया। अपने बाद के लेखों तथा पुस्तकों में उन्होंने अपने इन विचारों को विस्तार दिया।[8]

बाबरी मस्जिद का विध्वंस

इन सभी रचनाओं में अपनी प्रस्थापनाओं की पुष्टि के लिए सावरकर युरोप के इतिहास की शरण लेते हैं, और वहीं से, खासकर इटली, जर्मनी और इंगलैण्ड के इतिहास से अपने साक्ष्य जुटाते हैं। हिन्दुत्व का प्रेरणास्रोत युरोप का आधुनिक नस्लवादी-उग्रराष्ट्रवादी इतिहास है।

हिन्दुत्व का आशय (सावरकर के लिए भी) हिन्दू पंथ, दर्शन आदि से नहीं है; तथापि यह शब्द इस वैचारिक-राजनीतिक धारा के लोगों को (सावरकर को भी) अपनी सुविधानुसार इसे हिन्दू पंथ के साथ घुलामिला देने का अवसर प्रदान करता रहा है। (युरोप के ऐसे संगठन समाजवाद शब्द का प्रयोग किया करते थे।

तब पूंजी के संकट की स्थिति में समाजवाद एक लोकप्रिय शब्द तथा आन्दोलन था।) वैसे भी शब्दों और अर्थों का घालमेल तथा बाज़ीगरी इस वैचारिक धारा की पहचान रही है – जैसे, बजरंगबली और बजरंग दल।

आरएसएस शाखा

यहाँ यह याद रखना चाहिए कि समुदाय-आधारित भेदभाव, उत्पीड़न और हिंसा भारतीय समाज में पहले से **जाति-प्रथा** के रूप में संस्थाबद्ध था। भारतीय मिथकों में, पुराणों और अन्य साहित्य में समुदाय-आधारित हिंसा और संहार के किस्से प्रचलित थे। सबसे प्रचलित कथा (विष्णु के छठे अवतार) परशुराम द्वारा बाइस बार धरती को क्षत्रिय-विहीन करने की है। दूसरी कथा जनमेजय द्वारा नागों के विनाश की। (वैसे, ये कथाएँ किसी समुदाय विशेष के विनाश-अभियान की विफलता, और उनकी निर्रथकता की कथाएँ भी हैं।)

हिन्दुत्व का विचारः हिन्दू नस्ल हिन्दुत्व का आविष्कार है; भारतीय प्रायद्वीप में, सिन्धु (नदी) से सिन्धु (समुद्र) तक इस कथित नस्ल के वर्चस्व और उपनिवेशीकरण का अख्यान है, और 'हिन्दू राष्ट्र' (तथा 'हिन्दू साम्राज्य') के लिए एक हिंसक अभियान का आह्वान है। सावरकर के लिए हिन्दुत्व का विचार एक '**जीवंत सत्ता**' है, प्राचीन काल से ही इतिहास में सक्रिय एक '**परम-तत्त्व**' है, तमाम उतार-चढ़ावों के बीच **जिसकी पूर्णाहुति हिन्दू साम्राज्य की स्थापना में** होनी है। इसी के साथ इतिहास का भी अन्त होना है। इतिहास में सक्रिय 'परम तत्त्व' अथवा 'विचार' के, और प्रशा के राज्य के रूप में उसकी उपलब्धि के **हेगेल** के विचार के साथ हिन्दुत्व के विचार का साम्य देखा जा सकता है। सावरकर, इतालवी फ़ासिस्ट विचारक ज़ेन्टाइल की तरह हेगेल के दर्शन से प्रभावित थे और उसे हिन्दुत्व के अपने सूत्रीकरण पर लागू कर रहे थे।

बहरहाल, हेगेल के इस प्रभाव का एक कारण हेगेल का नस्लवाद भी था। हेगेल की 'फ़िलोसॉफ़ी ऑफ़ हिस्ट्री' का ज़िक्र करते हुए अफ़्रीकी विचारक **न्गुगी वा थ्योंगो** लिखते हैं कि हेगेल अफ़्रीकियों को मानवजाति का अंग नहीं मानते थे

और उन्हें मानवजाति के निम्न स्तर तक लाने के लिए दास प्रथा को ज़रूरी समझते थे। 'हेगेल वैसे तो दास प्रथा को अपने आप में अन्याय कहते थे, क्योंकि स्वतंत्रता मानवता का सार-तत्त्व है, लेकिन इस स्वतंत्रता के क़ाबिल होने के लिए वे पहले परिपक्व होना ज़रूरी समझते थे। इसीलिए दास प्रथा को एकबारगी खत्म करने के बजाए उसे क्रमिक रूप से खत्म करना उन्हें ज़्यादा बुद्धिमत्तापूर्ण तथा उचित लगता था।' थ्योंगो बौद्धिक लिहाज़ से हेगेल को उन्नीसवीं सदी के हिटलर की संज्ञा देते हैं।[9]

हिन्दुत्व में सावरकर द्वारा हिन्दू नस्ल (और राष्ट्र) की अवधारणा के प्रस्तुतीकरण में उन दिनों इस प्रश्न को लेकर युरोप में चल रहे विवादों का सीधा प्रभाव आसानी से देखा जा सकता है। शुद्ध आर्य नस्ल की नाज़ीवादी प्रस्थापना मुसोलिनी की तरह सावरकर के लिए भी किसी काम की नहीं थी। भारत में यह नस्लीय सिद्धान्त (मुसोलिनी के) सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के आधार पर प्रस्तावित किया जा सकता था। सावरकर के अनुसार, सिन्धु क्षेत्र के वैदिक आर्यों ने एक अत्यन्त विकसित संस्कृति की स्थापना की और कालक्रम में सिन्धु (नदी) से सिन्धु (समुद्र) तक के विशाल भारतीय प्रायद्वीप का उपनिवेशीकरण कर **सिन्धु (हिन्दू) राष्ट्र** की नींव रखी। उनकी नज़र में, दुनिया के अन्य हिस्सों में भी इसी तरह विकसित जनों द्वारा अविकसित जनों के उपनिवेशीकरण के ज़रिये हिंसा और बर्बरता के साथ राष्ट्रों का निर्माण संपन्न हुआ है। विकसित संस्कृति के वाहक वैदिक आर्यों ने यहाँ के स्थानीय जनों के उपनिवेशीकरण की प्रक्रिया में अपनी संस्कृति, अपने देवी-देवता, अपने कर्मकाण्ड आदि उन पर थोप दिए। कुछेक क्षेत्रीय भिन्नताओं के साथ लगभग पूरे प्रायद्वीप में इन्हीं देवी-देवताओं की पूजा होने लगी, उन्हीं के नाम पर बच्चों के नाम रखे जाने लगे, उन्हीं की कहानियाँ सुनी-गुनी जाने लगी आदि। इस तरह इस पूरे भूभाग का सिन्धुकरण (हिन्दूकरण) करने के क्रम में (स्मृति-ग्रंथों में वर्णित) अनुलोम-प्रतिलोम विवाहों के परिणामस्वरूप पर्याप्त रक्त सम्मिश्रण हुआ। इस तरह के विवाह शास्त्रों द्वारा अनमोदित नहीं थे। बहरहाल, रीति-रिवाजों ने जो रुकावटें खड़ी कर रखी थीं, प्रकृति ने उन्हें तोड़ डाला। इस तरह उपनिवेशीकरण और हिंसा के ज़रिये विजेता आर्यों और पराजित स्थानीय जनों के मिश्रण से **हिन्दू नस्ल** अस्तित्व में आया। इस हिन्दू नस्ल के उद्भव के साथ पुराना नस्लीय भेद भी तिरोहित हो गया। इस हिन्दू नस्ल में न कोई आर्य रहा, न द्रविड़, न कोली, न भील आदि। यह नस्ल **उन्नत**

वैदिक संस्कृति का उत्तराधिकारी है। इसी हिन्दू नस्ल की **पितृभूमि** और **पुण्यभूमि** है **हिन्दुस्थान।** फिर भी अगर कोई जन इस प्रक्रिया से अलग-थलग रह गया, तो भी उसे इसमें शामिल किया जा सकता है, अगर उसके देवी-देवता, पूजास्थल सभी यहीं हैं। [विभिन्न नस्लों के सम्मिश्रण से एक नस्ल/राष्ट्र के निर्माण के उदाहरण के रूप में सावरकर इंगलैण्ड को प्रस्तुत करते हैं। अन्तर्विवाहों पर नस्लीय पाबंदियों के बावज़ूद जिस तरह आइबेरियन, केल्ट, एंगल्स, सेक्सन, डेन, नारमन नस्ल के लोगों के मिश्रण से एक इंगलिश जाति (राष्ट्र) बनी, उसी तरह अनुलोम-प्रतिलोम विवाहों को प्रोत्साहित नहीं करने के बावज़ूद अन्तर-नस्लीय विवाहों के ज़रिये हिन्दू नस्ल अस्तित्व में आया।][10] इस हिन्दू नस्ल का ऐतिहासिक कार्यभार है क्षुद्र नस्लों/राष्ट्रों को, और राह में आई सारी बाधाओं को कुचल कर हिन्दुओं का विश्व-साम्राज्य क़ायम करना। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हिन्दुओं को एक सैन्य-नस्ल के रूप में संगठित करना है। प्राचीन हिन्दू साम्राज्य के पतन के बाद, इस्लामी तथा फिर युरोपीय साम्राज्यों का उत्थान हुआ, सावरकर अब हिन्दू साम्राज्य की पुनर्प्रतिष्ठा चाहते थे - चाहते थे हिन्दू राज्यों के साथ हिन्दुओं द्वारा पूरे विश्व का उपनिवेशीकरण। यह था सावरकर की हिन्दुत्व परियोजना का सार। सावरकर उपनिवेशवाद के विरोधी नहीं थे – वे तो ख़ुद एक साम्राज्य के निर्माण के पक्षधर थे। उन्हें इंगलैण्ड के साम्राज्य से कोई शिकवा नहीं था, वे तो एक छोटे से इंगलैण्ड द्वारा विश्व साम्राज्य क़ायम करने के उदाहरण से प्रेरणा प्राप्त करते थे – '..हमें इंगलैण्ड से उसके विजय को लेकर कोई शिकवा नहीं। एक अच्छे खिलाड़ी की तरह हम उसकी दक्षता और शक्ति की सराहना करते हैं। सागरों, महासागरों, देशों और महादेशों के ऊपर अपना हाथ फैलाते हुए, उसने हमारे संघर्षशील हाथों से भारतीय साम्राज्य छीन लिया, और उस बुनियाद पर एक शानदार विश्व-साम्राज्य खड़ा किया है – ऐसा साम्राज्य जिसका साक्ष्य इतिहास में विरले ही मिलता है।'[11]

1921 में बोलोग्ना में दिए गए भाषण में मुसोलिनी ने जिस तरह 'फ़ासिज़्म को आर्य और भूमध्यसागरीय नस्ल की गहन, चिरस्थायी ज़रूरत' के रूप में पेश किया था, उसी तरह दो वर्षों बाद, 1923 में, प्रकाशित अपनी रचना 'हिन्दुत्व' में सावरकर हिन्दुत्व को हिन्दू नस्ल की गहन, चिरस्थायी ज़रूरत के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

इस तरह, कुल मिलाकर, सावरकर के अनुसार, "जनों और ज़मीन के उपनिवेशीकरण की प्रत्यक्ष परिणति के रूप में ये शब्द ('हिन्दू' और 'हिन्दुस्थान') अस्तित्व में आये। उनके लिए यह एक द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया थी जिसके अन्तर्गत आधिपत्य और हिंसा के ज़रिये उपनिवेशक और उपनिवेशित, दोनों हिन्दू बने। इस प्रक्रिया में जो क्षेत्र बना, वह हिन्दुओं का क्षेत्र, अथवा हिन्दुस्थान था। एक क्षेत्र और एक नाम के अन्तर्गत हिन्दुओं की एकता का मतलब था भूमि के प्रचलित नामों की बहुलता को या तो येनकेन प्रकारेण महत्वहीन बना देना या फिर हिन्दुस्थान के अधीन उन्हें समाविष्ट कर लेना। .. हिन्दुओं का इतिहास एक ही साथ, जनों की बड़ी आबादी को जीतने **और** हिन्दू बनने की प्रक्रिया में इन जीते हुए जनों पर प्रभुता स्थापित करने का इतिहास है। इस प्रकार हिन्दू बनने (अथवा हिन्दू के रूप में रूपान्तरित होने) की प्रक्रिया ख़ुद एक हिंसात्मक प्रक्रिया ही थी।[12] .. हिन्दू के अर्थ में ही एक बुनियादी चरित्र-लक्षण के रूप में **हिंसा के ज़रिये एकता** मौज़ूद है।"[13]

बहरहाल, इस **हिन्दुत्व** में **मनुष्यत्व** की कोई जगह नहीं है। मनुष्यता का यही अभाव हिन्दुत्व (और प्रत्येक नस्लवादी-उग्र-राष्ट्रवादी विचार) को बर्बर बनाता है, एक मानव समुदाय द्वारा दूसरे मानव समुदाय पर की गई हिंसा को औचित्य प्रदान करता है।

मराठा प्रभुत्वः सावरकर की सभी प्रस्थापनाएँ जहाँ युरोप से प्रेरित हैं, वहीं बिना हिंसा और सैन्यीकरण के, बिना बर्बरताओं और जनसंहारों के उन प्रस्थापनाओं को कार्यरूप देने की उनके पास कोई गुंजाइश नहीं रहती। '**हिन्दू पाद-पादशाही**' में वे अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध में हिन्दू राज्यों के एकीकरण की संभावना पर लिखते हुए जर्मनी और इटली का उदाहरण पेश करते हैं। उनके अनुसार, जिस तरह जर्मनी के एकीकरण में **प्रशा के राजतंत्र** की भूमिका थी, और इटली के एकीकरण में **पिडमोंट के राजतंत्र** की, उसी तरह तब भारत छोटे-मंझोले हिन्दू राज्यों के एकीकरण में **महाराष्ट्र का राजतंत्र** वह भूमिका निभा सकता था।[14] एकीकरण की यह प्रक्रिया जर्मनी और इटली की तरह छोटे राज्यों के प्रति हिंसा के प्रयोग के बिना संभव नहीं थी। ऐसी हिंसा एकीकरण के वृहत्तर लक्ष्य के लिए ज़रूरी थी। इस तरह वे मराठों द्वारा दक्षिण बंगाल, उड़ीसा और अन्य जगहों पर ढाये गये ज़ुल्मों और जनसंहारों का बचाव करते हैं। (वैसे, 1818 में ईस्ट इंडिया

कम्पनी के हाथों मराठों की पराजय के साथ इस संभावना के दरवाजे बंद हो गये।)

आडवाणी की रथ यात्रा

नारी के प्रति दृष्टिकोणः नारियों के प्रति 'क्षात्रधर्म' (दुर्बल रक्षा) के हिन्दू विचार को सावरकर नैतिकता की विकृत अवधारणा मानते थे। उनके अनुसार, 'इसी आत्मघाती विचार के कारण मुस्लिम महिलाएँ उस कड़ी सज़ा से बच गईं जो उन्हें हिन्दू महिलाओं के प्रति किये गये वर्णनातीत पापों तथा अपराधों के लिए मिलनी चाहिए थीं। महिला होना ही उनकी सुरक्षा का पर्याप्त कारण बन गया। महिलाओं के प्रति क्षात्रधर्म का उन दिनों प्रचलित यह विकृत धार्मिक विचार अन्ततः हिन्दुओं के लिए अत्यन्त नुकसानदेह साबित हुआ।'[15] सावरकर इस विकृत नैतिकता के लिए शिवाजी और चिमाजी अप्पा को भी दोषी ठहराते हैं। उनके अनुसार, 'इससे भी बदतर तो हिन्दुओं का वह हास्यास्पद विचार था जिसके तहत मुस्लिम महिलाओं को हिन्दू धर्म में धर्मान्तरित करना पाप माना जाता था। .. स्वभावतः हिन्दू राज्य और हिन्दू समुदाय के बीच रहते हुए भी हिन्दुओं द्वारा उन्हें अपहृत करने अथवा हिन्दू धर्म में उन्हें धर्मान्तरित करने के किसी भी प्रयास से वे सुरक्षित थीं।'

सावरकर मानते थे कि इस्लाम-पूर्व भारत में नारियों के प्रति यह विकृत क्षात्रधर्म नहीं था। राम ने ताड़का का वध किया, लक्ष्मण ने शूर्पनखा की नाक काटी, और कृष्ण ने तो नरकासुर की कैद से सोलह हजार स्त्रियों को मुक्त कर उनका उद्धार किया (और इस तरह उन्हें असुर नस्ल के प्रसार का माध्यम बनने से बचा लिया)। विक्रमादित्य के शासन काल में शकों तथा हूणों की स्त्रियों का विवाह एवं अन्य तरीकों से हिन्दूकरण किया गया। हिन्दू नस्ल की स्त्रियों का शत्रुओं द्वारा अपने नस्ल का प्रसार न करने देने के लिए सावरकर 'जौहर' (आग में कूद कर जल जाने) का महिमामण्डन करते हैं।

महिलाओं के प्रति यह वीभत्स नस्लवादी दृष्टि आज भी हिन्दुत्व के अनुयायियों में देखी जा सकती है। सामूहिक बलात्कार के दोषियों का रिहा किया जाना, रिहाई के बाद उनका फूलमालाओं तथा मिठाई से स्वागत करना, और उन्हें सदाचारी ब्राह्मण बताना – नारियों के प्रति उसी दृष्टि का प्रमाण है।

बहरहाल, इन प्रसंगों में हम सावरकर के मनमाने इतिहास लेखन की, मिथकों की नस्लीय व्याख्या की, मिथक और इतिहास के घालमेल आदि की बानगी देख सकते हैं। आगे संभवतः यही इतिहास पाठ्यपुस्तकों में भी देखने को मिल सकती है!

हिन्दुत्व, बौद्ध धर्म, और अशोकः (व्यक्तिगत तौर पर बुद्ध के प्रति सम्मान व्यक्त करने के बावज़ूद) सावरकर बौद्ध धर्म के कतिपय उपदेशों तथा आचरणों को **राष्ट्र-विरोधी** करार देते हैं और बौद्धों पर भारतीय स्वतंत्रता तथा भारतीय साम्राज्य के हितों के साथ प्रायः **विश्वासघात** करने का आरोप लगाते हैं।[16] अशोक तो सावरकर के लिए भारतीय इतिहास के बड़े खलनायक हैं जिन्होंने बौद्ध धर्म अपनाने के बाद, अहिंसा जैसे कुछ बौद्ध उसूलों का प्रचार कर भारत के राजनीतिक दृष्टिकोण, उसकी राजनीतिक स्वतंत्रता और उसके साम्राज्य को काफ़ी क्षति पहुँचाई। 'इससे शत्रुओं का मनोबल बढ़ा और वे भारत की सीमाओं पर पुनः आक्रमण करने लगे।' सावरकर के अनुसार, वैदिक धर्म को केन्द्र कर वैदिक काल से ही भारतीय सभ्यता फली-फूली थी और इस वैदिक धर्म का मुख्य आधार था **बलि**। 'अशोक ने अहिंसा के नाम पर पूरे साम्राज्य में बलियों पर रोक लगा दी, और उन्हें दण्डनीय अपराध बना दिया। ब्राह्मणों, क्षत्रियों और अन्य वैदिक जनों से निर्मित आबादी के अस्सी प्रतिशत लोगों में इस प्रतिबंध से कितना रोष पैदा हुआ होगा, इसका सहज ही अंदाज़ा लगाया जा सकता है।.. वैदिक धर्म में शिकार को क्षत्रियों का ज़रूरी कर्तव्य माना जाता था, लेकिन अशोक ने उसपर भी प्रतिबंध लगा रखा था।'[17]

184 ईसा पूर्व में वैदिक धर्म के कट्टर समर्थक ब्राह्मण **पुष्यमित्र शुंग** ने मौर्य सम्राट **बृहदरथ** की हत्या कर सत्ता संभाली तो समस्त वैदिक कर्मकाण्ड के साथ उन्हें भारत का सम्राट घोषित किया गया। सावरकर आगे लिखते हैः सम्राट पुष्यमित्र ने जब पाटलिपुत्र में अश्वमेध यज्ञ करने की घोषणा की तो, बौद्धों की अल्पसंख्यक जमात को छोड़कर, सारे देश में खुशी की लहर दौड़ गयी, लोग

राष्ट्रीय गर्व और सैन्य-विजय के उल्लास में झूम उठे। सर्वोच्च राजनीतिक सत्ता की बदौलत अशोक ने अपनी जिस राजधानी में वैदिक हिन्दुओं को धार्मिक स्वतंत्रता से वंचित कर दिया था, उसी राजधानी में सम्राट पुष्यमित्र ने अश्वमेध यज्ञ किया। पुष्यमित्र का यह अश्वमेध इस बात की सार्वजनिक शाही घोषणा थी कि वैदिक हिन्दुओं पर अशोक द्वारा लगाये गये सारे प्रतिबंध समाप्त कर दिये गये हैं।[18]

सावरकर पुष्यमित्र शुंग के शासनकाल को भारतीय इतिहास का **दूसरा गौरवशाली युग** मानते हैं।

यहाँ हम पिछले सौ वर्षों के दौरान हिन्दुत्व की विचारधारा, उसकी कार्यप्रणाली और उसके क्रियाकलापों की कोई समीक्षा नहीं कर सकते। तथापि उपर्युक्त विवरण से हमें उसकी गति-प्रकृति का अंदाज़ा तो लग ही सकता है। केन्द्र में पिछले नौ वर्षों से सत्तारूढ़ इस विचारधारा के अनुयायी जनवादी-समाजवादी-पंथ-निरपेक्ष भारतीय संवैधानिक प्रजातंत्र को विस्थापित कर किस 'न्यू इंडिया' की स्थापना की कोशिश में हैं, इन वर्षों के दौरान उनके क्रियाकलापों से यह सहज ही समझा जा सकता है।

उपसंहार

संक्षेप में, यहाँ हम निम्नलिखित बातों पर गौर कर सकते हैः

1. हिन्दुत्व की पूरी थीसिस जहाँ एक ओर फ़ासीवाद से प्रेरित थी, वहीं दूसरी ओर वह **महात्मा गांधी** और **रबीन्द्रनाथ ठाकुर** के राष्ट्रवाद-सम्बन्धी विचारों के खण्डन में रची गयी थी। 1909 में **हिन्द स्वराज** में महात्मा गांधी ने और 1919 में अपने निबन्ध **ऑन नेशनलिज़्म** में रबीन्द्रनाथ ठाकुर ने जिस समावेशी राष्ट्रवाद का प्रतिपादन किया था, सावरकर का राष्ट्रवाद उसके ख़िलाफ़ एक विघटनकारी, संकीर्ण नस्लीय राष्ट्रवाद का उद्घोष था। समग्र रूप से देखें तो गांधी, रबीन्द्रनाथ, **जवाहरलाल नेहरू, बाबासाहेब आम्बेडकर, भगत सिंह** के राष्ट्र-सम्बन्धी विचारों के बिल्कुल विपरीत हिन्दुत्व के पैरोकार औपनिवेशिक शासन के ख़िलाफ़ व्यापक जनसमुदाय की एकजुटता को मुस्लिमों के ख़िलाफ़ एक रक्तरञ्जित मुहिम में अधोपतित कर देना चाहते थे। एक ओर समावेशी, जनतांत्रिक स्वतंत्रता

आन्दोलन था, दूसरी ओर इस आन्दोलन में समस्त भारतीयों की एकता को विघटित करनेवाली कथित हिन्दू नस्ल के वर्चस्ववाली मुस्लिम-विरोधी धारा थी।

2. भारतीय समाज की अपनी अन्दरूनी बर्बरताएँ थी, भेदभाव तथा उत्पीड़न पर आधारित जाति-प्रथा थी, अस्पृश्य थे, साम्राज्य विस्तार के लिए राजाओं के युद्ध थे, इन युद्धों और संघर्षों की क्रूरताएँ थीं। हिन्दुत्व इन अन्दरूनी बर्बरताओं और संघर्षों पर पर्दा डालकर हिन्दुओं को कुछ समुदाय विशेष (भारतीय प्रायद्वीप के मुसलमानों तथा ईसाइयों) के ख़िलाफ़ गोलबंद करने की परियोजना है। (प्रायद्वीप के बाहर के मुसलमानों या ईसाइयों से इनका टकराव अमूमन तब होता है जब वे भारतीय मुस्लिमों या ईसाइयों के अधिकारों के हनन का विरोध करते हैं।) उनके द्वारा इतिहास के पुनर्लेखन में यह दृष्टि दिशा-निर्देश के रूप में काम करती है।

3. यहाँ यह याद रखना चाहिए कि इस तरह की विचारधारा अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए पहले अपने समाज को ही बंदीगृह में तब्दील कर देती है – अपने समुदाय के लोगों के जनवादी अधिकारों का, उनकी स्वतंत्रता का हनन दूसरे समुदाय के दमन या उपनिवेशीकरण का अनिवार्य अंग होता है। दरअसल, अपने समुदाय/नस्ल/राष्ट्र के उद्धार के नाम पर सम्बन्धित समुदाय का अल्पसंख्यक अभिजात्य समूह अपना आर्थिक-सामाजिक-सांस्कृतिक वर्चस्व बनाये रखने के लिए सारी सत्ता अपने हाथ में ले लेना चाहता है – ऐसे सर्वसत्तावादी समूह के त्राणकर्ता नेता को अपने ही समुदाय के स्वतंत्रचेता लोगों से डर लगता है, समुदाय का स्वनामधन्य हितैषी होने के उनके ढोंग और उनके वर्चस्व को चुनौती देने वाले समाज के जीवंत मेहनतकश सृजनशील वर्गों तथा तबकों से वे ख़ौफ़ खाते हैं। सर्वसत्तावाद जीवन के किसी भी क्षेत्र में स्वतंत्र पहलकदमी की इज़ाज़त नहीं देता, ऐसी किसी गतिविधि की इज़ाज़त नहीं देता जिसकी गति-प्रकृति पहले ही पूरी तरह स्पष्ट न हो।[19] प्रतिभा का स्थान क्रमशः जयजयकार तथा ताली बजानेवाली भक्तों की मंडली ले लेती है। हिन्दुत्व के ख़िलाफ़ संघर्ष इस अभिजात्य सर्वसत्तावाद से हिन्दुओं की मुक्ति का भी संघर्ष है।

4. सत्ता के शीर्ष तक हिन्दुत्व के पहुँचने के पीछे अनेक कारक हैं (जिनका वर्णन यहाँ संभव नहीं)। बहरहाल, कॉरपोरेट पूंजी के समर्थन-संरक्षण-प्रोत्साहन के बिना इसका केन्द्रीय सत्ता में आना संभव न था। हिन्दू गोलबंदी के उनके रक्तपातपूर्ण प्रयासों और अभियानों की अपनी भूमिका तो है, लेकिन वे अपने

आप में उन्हें सत्ता पर निर्णायक वर्चस्व नहीं दिला सकते थे – कॉरपोरेट घरानों के समर्थन ने यह संभव किया। मैक्स होर्खाइमर की शैली में कहें तो अगर आप कॉरपोरेट पूंजी के बारे में बात करना नहीं चाहते तो बेहतर है कि आप हिन्दुत्व के बारे में चुप ही रहें। कॉरपोरेट पूंजी को अपने विस्तार के लिए जिस सर्वसत्तावादी निज़ाम की ज़रूरत थी, वह उन्हें तत्कालीन परिस्थितियों में हिन्दुत्व की शक्तियाँ ही प्रदान कर सकती थीं। बदले में सार्वजनिक सम्पत्ति पर इन घरानों के नियंत्रण का मार्ग प्रशस्त कर दिया गया, इसके लिए कानूनों में संशोधन-परिवर्धन किए गए, तथा जहाँ जो भी ज़रूरी समझा गया, किया गया। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान और उसके बाद श्रमिकों, किसानों, आदिवासियों तथा वंचित समुदायों ने संघर्षों के ज़रिये जो अधिकार हासिल किये थे, उन्हें या तो निरस्त कर दिया गया या फिर काफ़ी कमज़ोर बना दिया गया। कॉरपोरेट पूंजी तथा हिन्दू अभिजातों के अत्यन्त अल्पसंख्यक समूह के हित में की गई यह प्रतिक्रान्ति अब क्रमशः शिक्षा, संस्कृति और जीवन के अन्य क्षेत्रों में विस्तार पा रही है। नफ़रत की राजनीति पर आधारित यह प्रतिक्रान्ति 'न्यू इंडिया' का सार है।

5. बहरहाल, भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही न्याय, सम्मान और समृद्धि के लिए शोषित-उत्पीड़ित-वंचित समुदायों, जातियों तथा वर्गों के संघर्षों, सुधारों और क्रान्तियों की भी अविरल धारा बहती चली आ रही है और इसने समय-समय पर जनएकता की अभूतपूर्व मिसालें क़ायम की हैं, सद्भाव एवं समन्वय के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं, और भारतीय संस्कृति के निर्माण में गौरवशाली भूमिका निभायी है। आज के समय में भी हम विभिन्न आन्दोलनों में – भूमि-अधिग्रहण कानूनों में संशोधनों के ख़िलाफ संघर्षों से लेकर नागरिकता-कानून-विरोधी आन्दोलन और किसान आन्दोलन आदि में – उस धारा की उपस्थिति देख सकते हैं। हजारों साल पुरानी समन्वय, सद्भाव और सहकार की संघर्षशील और सृजनशील परम्परा पर हिन्दुत्व का यह

नरोदा पटिया हत्याकांड

सौ साल का निन्दनीय, विघटनकारी इतिहास कदापि हावी नहीं हो सकता। हिन्दू नस्ल/राष्ट्र यदि (सावरकर के लिए) भारतीय उपमहाद्वीप के उपनिवेशीकरण के परिणामस्वरूप सामने आया, तो भारतीय राष्ट्र हर उपनिवेशीकरण के ख़िलाफ़ स्वतंत्रता, समानता तथा मैत्री पर आधारित भारतीय जनसमुदाय की संघर्षशील एकजुटता का प्रतीक है।

अन्त में डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर की यह चेतावनी याद रखनी चाहिएः "अगर हिन्दू राज हक़ीक़त बनता है तब वह इस मुल्क के लिए सबसे बड़ा अभिशाप होगा। .. हिन्दू राज को किसी भी कीमत पर रोका जाना चाहिए।"[20]

टिप्पणियाँ

1. जिल्लेट आरों (2001), 'रेसियल थ्योरीज़ इन फ़ासिस्ट इटली', राउटलेज़, लंदन, पृ. 11, 39. इस लेख में उद्धृत सभी अँग्रेज़ी उद्धरणों का हिन्दी भावानुवाद या रूपान्तर लेखक द्वारा।
2. साल्वेमिनी गायतानो (2018), 'अंडर द एक्स ऑफ़ फ़ासिज़्म', क्रिस्टी ईबुक्स.
3. ज़र्मा बेल (2009), 'फ़्रॉम पब्लिक टु प्राइवेटः प्राइवेटाइजेशन इन 1920ज फ़ासिस्ट इटली', पीडाएफ. researchgate.net/publication/46447401_From_Public_to_Private_Privatization_in_1920's_Fascist_Italy
4. हन्ना अरेंत (2017), 'द ओरिजिन्स ऑफ़ टोटलिटेरियनिज़्म', अध्याय 11, 'द टोटलिटेरियन मूवमेण्ट', फुटनोट 3, पेंग्विन क्लासिक्स (किंडल संस्करण).
5. कोरी रोबिन (2014), 'कैपिटलिज़्म एण्ड नाज़िज़्म'. jacobin.com/2014/04/capitalism-and-nazism
6. ब्रेडले मैकडोनाल्ड और कैथरीन ई. यंग (2021), 'क्रिटिकल थ्योरी, फ़ासिज़्म एण्ड एंटी-फ़ासिज़्मः रिफ़्लेक्शंस फ़्रॉम ए डेमेज़्ड पोलिटी', 'इमेनसिपेशंसः ए जर्नल ऑफ़ क्रिटिकल सोशल एनेलिसिस', खण्ड 1, अंक 1, ऑर्टिकल 3, सितम्बर 2021, स्कॉलर्स जंक्शन, पृ. 1. मैक्स होरख़ाइमर की रचना 'द ज़्यूज एण्ड यूरोप' (1938) से उद्धृत.

7. स्पेन के गृहयुद्ध में शामिल छः भारतीय थेः प्रख्यात लेखक मुल्कराज आनंद, डॉ. अटल मेंहनलाल, डॉ. अयूब अहमद खाँ नक्शबंदी, डॉ. मैनुएल पिंटो, एक छात्र रामसामी वीरपन, और गोपाल मुकुंद हुद्दार। गोपाल मुकुंद हुद्दार (1902-1981) राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक सदस्य थे। 1929 से 1931 के बीच वे आर.एस.एस के सरकार्यवाह (महासचिव) थे। शीघ्र ही उन्होंने आर.एस.एस के हिन्दू साम्प्रदायिक संकीर्ण विचारों के कारण उससे दूरी बना ली। कुछ दिनों तक बंगाल के क्रान्तिकारी संगठन 'युगांतर' से जुड़े रहे और शस्त्रास्त्र इकट्ठा करने के आरोप में बालाघाट षडयंत्र केस के अन्तर्गत गिरफ़्तार भी हुए। जेल से छूटने के बाद इंगलैण्ड चले गये जहाँ उनका सम्पर्क कम्युनिस्ट पार्टी से हुआ और वे कम्युनिस्ट गतिविधियों में सक्रिय हो गये।। उन्हीं दिनों उन्होंने स्पेन के गृहयुद्ध (1936) में भाग लिया और वहाँ गिरफ़्तार हुए। छूटने के बाद 1939 में वे भारत आ गये। औपचारिक रूप से वे 1940 में भारत की कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल हुए। स्पेन में गणतंत्रवादियों के पक्ष में 'इंटरनेशनल ब्रिगेड' का गठन 'कम्युनिस्ट इंटरनेशनल' की पहल पर हुआ था। इस ब्रिगेड में शामिल ब्रिटिश बटालियन का नाम इंगलैण्ड में सक्रिय प्रख्यात भारतीय कम्युनिस्ट नेता शापुरजी सकलतवाला के नाम पर 'सकलतवाला बटालियन' रखा गया था। सकलतवाला का 1936 में निधन हो गया था। स्पेनी गणतंत्र के समर्थन में लंदन में स्पेन-इंडिया कमिटी का गठन किया गया था। इसी कमिटी के तहत सकलतवाला की 18-वर्षीय बेटी सेहरी सकलतवाला ने मार्च 1937 में एक कार्यक्रम आयोजित किया था – इस कार्यक्रम की एक वक्ता 19-वर्षीय इंदिरा नेहरू भी थीं। जवाहरलाल नेहरू इस फ़ासिस्ट खतरे से काफ़ी चिन्तित थे और लंदन में उन्होंने भारतीयों से इस गृहयुद्ध में गणतंत्रवादियों की ओर से शामिल होने का आह्वान किया था। 1938 में गणतंत्रवादियों के साथ अपनी एकजुटता प्रदर्शित करने के लिए वे इंदिरा के साथ स्पेन भी गये थे।

डॉ. अटल मेंहनलाल इस गृहयुद्ध में शामिल होने कनाडा से डॉ. नॉरमन बेथ्यून के साथ आये थे। डॉ. बैथ्यून इस गृहयुद्ध की समाप्ति के बाद चीन में कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में चल रहे जापानी आक्रमण विरोधी युद्ध में शामिल होने चीन चले गये।

8. एक मराठा (1923), 'हिन्दुत्व', प्रकाशकः वी.वी. केलकर, नागपुर। विनायक दामोदर सावरकर की अन्य किताबें जिन्हें इस लेख में उद्धृत किया गया हैं, वे हैः 'हिन्दू पाद-पादशाही ऑर ए क्रिटिकल रीव्यू ऑफ़ दि हिन्दू एम्पायर ऑफ़ महाराष्ट्र' (1925), बी.जी. पॉल एण्ड कम्पनी, मद्रास, अनुवाद और सम्पादनः एस.टी. गोडबोले, और 'सिक्स ग्लोरियस इपोक्स ऑफ़ इंडियन हिस्ट्री' (1971), प्रकाशकः बाल सावरकर, सावरकर सदन, बम्बई – 28, सहायक प्रकाशक और एकमात्र वितरकः राजधानी ग्रंथागार, लाजपत नगर, नई दिल्ली – 24, यह सावरकर की अन्तिम कृति थी और मरणोपरांत छपी थी।
9. न्गुगी वा थ्योंगो (1986), 'डिकोलोनाइज़िंग द माइंडः द पोलिटिक्स ऑफ़ लैंग्वेज़ इन अफ़्रीकन लिटरेचर', जेम्स करी लिमिटेड, लंदन, फुटनोट 15.
10. एक मराठा (1923), 'हिन्दुत्व', प्रकाशकः वी.वी. केलकर, नागपुर, पृ. 107-108.
11. विनायक दामोदर सावरकर (1925), 'हिन्दू पाद-पादशाहीः ए क्रिटिकल रीव्यू ऑफ़ दि हिन्दू एम्पायर ऑफ़ महाराष्ट्र', बी.जी. पॉल एण्ड कम्पनी, मद्रास, अध्याय viii, 'द कर्टेन फ़ॉल्स', पृ. 287.
12. विनायक चतुर्वेदी (2022), 'वी.डी. सावरकर एण्ड दि पोलिटिक्स ऑफ़ हिस्ट्री', स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ़ न्यू यार्क प्रेस, अल्बानी, पृ.125-6. प्रसंगवश, 1938 के आसपास सावरकर नाज़ी जर्मनी में भी नोटिस किये जाने लगे थे। 3 नवम्बर, 1938 को इंडिया फ़ॉरेन पॉलिसी शीर्षक लेख में सावरकर ने चेकोस्लोवाकिया के जर्मन-बहुल सुडेटनलैण्ड पर जर्मनी के कब्ज़े का स्वागत किया था और नाज़ीवाद की प्रशंसा की थी। ज़वाब में नाज़ियों के आधिकारिक समाचार-पत्र में सावरकर के प्रशंसास्वरूप उनका एक परिचय प्रकाशित हुआ था। जर्मन विदेश विभाग की ख़ुफ़िया रिपोर्टों में उनके नाम, उनके लेखों तथा भाषणों और उनकी गतिविधियों का उल्लेख होने लगा था। 1940 में जर्मन विदेश विभाग ने सावरकर की रचना द इंडियन वार ऑफ़ इंडिपेंडेंस ऑफ़ 1857 का जर्मन अनुवाद भी प्रकाशित किया था। वही, 'इंट्रोडक्शन', पृ. 22-23.
13. वही, पृ. 123.

14. सावरकर, ‘हिन्दू पाद-पादशाही’, पृ. 154.
15. सावरकर, ‘सिक्स ग्लोरियस इपोक्स’, पृ. 179-80.
16. वहीं, पृ. 62, 86.
17. वही, पृ. 63-64.
18. वही, पृ. 79-80.
19. हन्ना अरेंत, ‘द ओरिजिन्स ऑफ़ टोटलिटेरियनिज़्म’, अध्याय 10, ‘ए क्लासलेस सोसायटी’, किंडल संस्करण.
20. डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर (2014), ‘डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज’, खण्ड 8, ‘पाकिस्तान ऑर द पार्टीशन ऑफ़ इंडिया’, सम्पादनः बसंत मून, महाराष्ट्र सरकार के शिक्षा विभाग द्वारा प्रकाशित (26 जनवरी, 1990), डॉ. आम्बेडकर फॉउंडेशन, नई दिल्ली द्वारा पुनर्मुद्रित जनवरी 2014, पृ. 358.

मई, 2023.

(समाप्त)

'सबॉल्टर्न' (अंक 6, वर्ष 5, जुलाई 2023) में प्रकाशित।